बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-07-16

# कपड़ा क्षेत्र में 1 करोड़ रोजगार का लक्ष्य हासिल करना नहीं आसान

**श्यामल मजूमदार**

कपड़ा क्षेत्र के लिए सरकार द्वारा घोषित 6,000 करोड़ रुपये के विशेष पैकेज का हर किसी ने स्वागत किया है। इसके तहत कपड़ा बनाने वाली कंपनियों को कर, उत्पादन और श्रम में प्रोत्साहन दिया जाएगा। सरकार उम्मीद कर रही है कि इससे भारतीय कंपनियों की प्रतिस्पद्र्घा क्षमता में सुधार आएगा और वे वैश्विक बाजार में दूसरे देशों की कंपनियों के साथ मुकाबला कर पाएंगी। कंपनियां अब निश्चित अवधि के लिए कर्मचारियों के साथ अनुबंध कर सकती हैं। साथ ही अतिरिक्त समय की सीमा दोगुनी कर दी गई है और महिला कर्मचारियों को ज्यादा स्वतंत्रता दी गई है। कपड़ा क्षेत्र में पहले से ही महिलाओं की अच्छी खासी संख्या है।

कपड़ा क्षेत्र में निर्माण क्षमता के मामले में भारत दुनिया में दूसरे स्थान पर है। विश्व का 13 प्रतिशत कपड़ा, फाइबर और धागे का उत्पादन भारत में होता है। कृषि के बाद यह देश में सबसे बड़ा नियोक्ता है और 3.2 करोड़ लोग कपड़ा क्षेत्र से जुड़े हैं। यही वजह है कि इस पैकेज की लंबे समय से प्रतीक्षा की जा रही थी। सरकार को उम्मीद है कि इस पैकेज से कपड़ा क्षेत्र में लाखों और रोजगार पैदा होंगे। इस क्षेत्र में अगले तीन वर्षों में एक करोड़ नए रोजगार पैदा होने की संभावना जताई जा रही है।

लेकिन एक करोड़ रोजगार का लक्ष्य शायद मरीचिका ही बनकर रह जाए। कपड़ा क्षेत्र के लिए पैकेज की घोषणा होने के महज एक सप्ताह बाद इस उद्योग से जुड़ी संस्था टेक्सप्रोसिल और ईवाई ने एक अध्ययन रिपोर्ट जारी की। इसमें कहा गया है कि एक करोड़ रोजगार के लक्ष्य के करीब पहुंचने के लिए सरकार को अभी बहुत कुछ करने की जरूरत है। इसके मुताबिक कपड़ा उद्योग अगले पांच साल में केवल 29 लाख रोजगार ही पैदा कर पाएगा जो सरकार के लक्ष्य का एक तिहाई है। हालांकि इस दौरान इसका बाजार 40 प्रतिशत बढ़कर 142 अरब डॉलर पहुंचने की उम्मीद है। ऐसा इसलिए है क्योंकि तकनीकी विकास के कारण कार्यकुशलता तो बढ़ी है लेकिन रोजगार के अवसरों में कमी आई है। इसकी

एक बानगी यह है कि कताई, ऑटोकॉनर और ऑटोस्प्लाइसर डिवीजनों में जहां पहले 20 कामगारों की जरूरत पड़ती थी वहीं अब यह संख्या दो पर आकर सिमट गई है।

इस अध्ययन के मुताबिक अगर दो मुद्दों पर ध्यान दिया जाए तो ये रोजगार पैदा करने में उत्प्रेरक का काम कर सकते हैं। पहला मुद्दा यह है कि यूरोपीय संघ, ऑस्ट्रेलिया और कनाडा के साथ मुक्त व्यापार समझौता नहीं होने के कारण कपड़ा क्षेत्र में भारत को करीब 55 लाख नौकरियां खोनी पड़ी हैं। अगर भारत का इन देशों के साथ मुक्त व्यापार समझौता होता तो अतिरिक्त निर्यात के कारण इतनी नौकरियों का सृजन होता। दूसरा मुद्दा यह है कि हमें रोजगार का हब ऐंड स्पोक मॉडल अपनाने की जरूरत है। इसमें छोटे शहरों में हब बनाए जा सकते हैं और आसपास के गांवों में विनिर्माण स्पोक स्थापित किए जा सकते हैं।

बांग्लादेश और कंबोडिया जैसे देशों में हब ऐंड स्पोक मॉडल को सफलतापूर्वक लागू किया गया है। टेक्सप्रोसिल के मुताबिक इस मॉडल से कामगारों की भागीदारी की दर में सुधार आएगा, खासकर गांवों और छोटे शहरों में महिलाएं इससे जुड़ेंगी। इस मॉडल के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में कम से कम 5,000 वर्ग फुट क्षेत्र में विनिर्माण शेड बनाए जाएंगे जहां हर स्पोक में करीब 500 महिलाओं को रोजगार मिलेगा। ऐसे स्पोक को रोजगार के पुष्टï सबूत के साथ कपड़ा कंपनियों को पट्टे पर दिया जा सकता है।

ऑटोमेशन यानी स्वचालित मशीनों का चलन बढऩे की संभावना के चलते आने वाले दिनों में रोजगार के अवसर और कम होंगे। यह एक वास्तविकता है। विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के मुताबिक भारत में 69 प्रतिशत नौकरियों पर ऑटोमेशन की तलवार लटक रही है। पिछली बार हुए तकनीकी बदलावों के कारण निचले और मध्यम स्तर के कई रोजगार समाप्त हो गए हैं। सोचिए कि पहले कार्यालयों में सचिवों, टाइपिस्टों, टेलीफोन और कंप्यूटर ऑपरेटरों तथा बाबुओं की फौज होती थी। लेकिन सस्ते और तेज कंप्यूटरों तथा बेहतरीन सॉफ्टवेयर ने मशीनों को ऐसी क्षमता दी है जिस पर कभी इंसानों का ही अधिकार माना जाता था। जैसे भाषणों को समझना, एक भाषा से दूसरी भाषा में अनुवाद करना और पैटर्न को पहचानना। ऑटोमेशन ऐसे क्षेत्रों में पहुंच रहा है जहां सबसे ज्यादा रोजगार पैदा होता है।

ऐसे में अगर सरकार को तीन साल में एक करोड़ रोजगार पैदा करने के अपने लक्ष्य को पूरा करना है तो उसे कपड़ा क्षेत्र की जरूरत के दूसरे क्षेत्रों में तेजी से आगे बढऩे की जरूरत है। अनुमान है कि चीन के परिधानों की कीमतों में दस प्रतिशत की बढ़ोतरी से भारतीय परिधान उद्योग में कम से कम 12 लाख रोजगार के नए अवसर पैदा होंगे। ऐसे में भारतीय और दूसरे दक्षिण एशियाई देशों के पास बहुत बड़ा अवसर है।

दैनिक जागरण

Date: 22-07-16

# सुधारवादी सोच की जरूरत

इस्लाम के नाम पर आतंकवाद के जिस नए रूप को दुनिया देख रही है वह मुस्लिम समाज और इस्लाम के प्रति एक राय का निर्माण भी कर रही है। ऑरलैंडो से लेकर ढाका तक, मदीने से लेकर बगदाद तक, इस्तांबुल से लेकर पेरिस तक घट रही हर आतंकी घटना की निंदा होनी चाहिए। मुसलमानों का एक धड़ा तो ऐसी घटनाओं के विरोध में बहुत मुखर है, लेकिन एक विचारधारा विशेष के लोग उसके समर्थन में हैं या फिर मौन हैं। आज पश्चिम एशिया में तबाही का पर्याय बना इस्लामिक स्टेट हो या फिर भारत के लिए खतरा बने लश्कर, जैश या जमात उद दावा जैसे संगठन, इन सबके बारे में उस मजहबी दलील को समझने की जरूरत है जो हिंसा को उचित ठहराती है? इस्लाम के नाम पर फैलाई जाने वाली आतंकी विचारधारा सभी मुसलमानों को प्रभावित करती है और उन्हें अपनी पड़ोसी कौमों के सामने शर्मिंदा करती है। इसका सबसे भयानक पहलू यह है कि उनके धार्मिक विचारों के बारे में ज्यादा से ज्यादा गलतफहमी पैदा हो रही है। आतंकियों की बर्बरता के लिए इस्लाम पर आरोप लगाना उचित नहीं है, लेकिन जब आतंकी इस्लाम का लिबास ओढ़ते हैं तो वह नाम मात्र की ही सही, इस्लाम की पहचान को अपना लेते हैं। इस्लाम तो यह सीख देता है कि अत्याचार पर चुप्पी साधे रहना और उसकी निंदा न करना भी खुद अत्याचार ही करने करने के समान है। इस्लाम के बुनियादी स्रोत का ईमानदारी से अध्ययन किया जाए तो यही पता चलता है कि इस्लाम अपने अंदर सबको समाहित कर लेने का लचीलापन रखता है।

इस्लाम का बुनियादी सिद्धांत यह कहता है कि एक मासूम की जान लेना पूरी मानवता की हत्या के समान है।

आज मुस्लिम समाज को दुनिया भर में शांति और सुरक्षा चाहने वाले लोगों के साथ मिलकर इस्लाम के इन संतुलित और सार्वभौमिक मूल्यों का प्रदर्शन करना होगा। इस्लामी दुनिया की सरकारों को ऐसा शैक्षिक पाठ्यक्रम तैयार करना होगा जो लोकतांत्रिक मूल्यों को बढ़ावा दे। दूसरों को स्वीकार करने के मानवीय मूल्य को फैलाने में मुस्लिम समाज एक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। उदाहरण के तौर पर भारत में ऑल इंडिया उलमा और मशाईख बोर्ड है, जिसने अब तक 30 से अधिक मुस्लिम इलाकों में सूफीमत, हिंदू-मुस्लिम संवाद और सामाजिक सद्भाव को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न सूफी महापंचायतों का आयोजन किया है। आतंकवाद को कभी आतंक से नहीं मिटाया जा सकता। प्रसिद्ध इस्लामी सूफी-संत हजरत निजामुद्दीन औलिया ने कहा था, यदि राह में कांटे बिछाने वालों को कांटे बिछाकर जवाब दिया जाएगा तो पूरी दुनिया कांटों से भर जाएगी। यही कारण है कि सूफी-संतों के पास हर जाति और धर्म के लोग बिना किसी भेदभाव के आते रहे और एक-दूसरे से जुड़ते रहे। आज भी हर धर्म और समुदाय के लोग उनके प्रति आदर रखते हैं।

आज जब दुनिया वैश्विक संकट का शिकार है तो सूफीमत का रास्ता ही समस्स्याओं का समाधान बन कर सामने आ रहा है। धार्मिक अराजकता के वैश्विक संकट के समाधान की खोज में दुनिया भर के सूफी-संत इसी वर्ष दिल्ली के रामलीला मैदान में इकट्ठा होकर वैश्विक भाईचारे और धार्मिक सौहार्द्र का संदेश देते नजर आए थे। यह सूफी सम्मलेन इसलिए बहुत महत्वपूर्ण रहा, क्योंकि इसमें उस आतंकी हथियार को नाकाम करने की कोशिश की गई जिसकी मदद से कट्टर विचारधारा को नौजवान मुसलमानों में बढ़ावा दिया जाता है। कट्टर सलफी-वहाबी उलेमा इस्लामी विचारों को तोड़-मरोड़ कर पेश करते हैं और धर्म के नाम पर मुस्लिम युवाओं का राजनीतिक शोषण करते हैं। मुंबई के वहाबी विद्वान जाकिर नाइक भी ऐसे ही एक धर्मशास्त्री हैं। पिछले कई बरसों से भारत में धर्म के बाजार में सबसे ज्यादा कीमत अगर किसी मुस्लिम उपदेशक को मिली है तो वह जाकिर नाइक ही हैं। सऊदी अरब और विभिन्न मुस्लिम देशों से भारी रकम हासिल करके आज वह 'पीस टीवी' नाम के कट्टरता फैलाने वाले चैनल के मालिक हैं। जाकिर नाइक खुद को इस्लाम और दूसरे धर्मों का विद्वान कहते हैं। उन्होंने धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन में एक खास

दृष्टिकोण से विशेषज्ञता प्राप्त की है। वह भारत के अलावा अन्य देशों में भी इसी हवाले से मशहूर हैं। कुछ मुसलमानों की राय में वह अंतरराष्ट्रीय स्तर पर इस्लाम के प्रचारक हैं, लेकिन वह इस्लाम की छवि बेहतर तौर पर पेश करने के बजाय व्यवस्थित तरीके से इस्लाम और मुसलमानों के बारे में खौफ 'इस्लामोफोबिया' फैलाने का काम कर रहे हैं। एक पश्चिमी लेखक ने काफी समय तक इस्लाम को समझने की कोशिश की। इस्लामी परंपरा, सभ्यता और अरबी भाषा के अलावा इस्लामी शिक्षाओं ने उसके अंदर इस्लाम के प्रति दिलचस्पी पैदा कर दी थी। वह इंटरनेट पर आधुनिक इस्लामी प्रचारकों, खासतौर पर जाकिर नाइक को सुनता रहा। एक दिन उसका ध्यान उनके उस बयान पर केंद्रित हो गया जिसमें नाइक ने ओसामा बिन लादेन की निंदा करने से इंकार किया। इस पर अपनी हैरानी जताते हुए उन्होंने लिखा-यह हैं जाकिर नाइक जो व्यवस्थित तरीके से इस्लाम के खौफ का प्रचार कर रहे हैं। उनके अनुसार, 'समाज का वह हिस्सा जो इस तरह के बर्ताव को बर्दाश्त करता है वह धार्मिक उग्रवाद को फैलाने में मदद करता है। यही बर्ताव सार्वजनिक जीवन में विचार विमर्श में रुकावट डालता है। आज के पढ़े लिखे समाज में भी इस तरह के तर्क को एक बड़े समूह का समर्थन प्राप्त है। इसके बहुत ही खतरनाक नतीजे होंगे। जब तक सब लोग ये जानेंगे और इसकी तबाही से वाकिफ होंगे तब तक बहुत देर हो चुकी होगी।'

जाकिर नाइक जैसे लोग हमेशा मौजूद रहेंगे जो धार्मिक मान्यताओं को तोड़-मरोड़ कर पेश करेंगे। ऐसे में यह ज्यादा जरूरी है कि मुस्लिम समाज इस्लाम के आधुनिकतावादी और संतुलित सिद्धांतों को बढ़ावा दे। अपने धर्म और ईमान के अनुसार जीवन जीने का मतलब यह है कि हम सांस्कृतिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक विविधता का सम्मान करें। मुसलमानों को चाहिए कि वे अपने समाज में मानव अधिकार को पर्याप्त स्तर पर बढ़ावा दें। उन्हें अपने समाज के प्रत्येक सदस्य को शिक्षा के ऐसे अवसर प्रदान करने चाहिए जहां विज्ञान और कला के साथ मानवता के लिए सम्मान उनकी संस्कृति का अटूट हिस्सा हो।

[ लेखक गुलाम रसूल देहलवी, जामिया मिलिया इस्लामिया में रिसर्च स्कॉलर एवं इस्लामी मामलों के जानकार हैं ]

THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-07-16

# Bravo, Maharashtra, for courage on APMC

The Maharashtra government must not roll back its decision to delist fruit and vegetables from the Agricultural Produce Market Committee (APMC) Act. The law makes it mandatory for farmers to sell only to a designated bunch of middlemen, allowing them to control the trade in farm produce and corner the benefit of higher prices. Excluding fruit and vegetables from the ambit of the Act is welcome. It would enable organised retail to procure directly from farmers, giving them extra income and the incentive to produce more. Traders have threatened to surrender their licenses in protest. The state government should not yield to pressure and stand by its decision, which is pro-farmer and pro-consumer

In 2014, Delhi delisted fruits and vegetables from the APMC Act. Bihar has scrapped the law. However, India has thousands of agricultural markets, with state APMC Acts creating fragmented markets for farm produce. The Economic Survey had lamented that reforming APMC posed a challenge due to the nexus between politically influential people manning state-level marketing committees and middlemen. This makes the case for states to be prodded to amend their APMC Acts compelling.

The National Agricultural Market, a common electronic platform that gives farmers and buyers the leeway to sell and buy freely is a good idea. Policy focus should also be to develop marketing infrastructure and make the supply chain that links the farmer to the consumer efficient (Amul offers a good example). Investment in cold chains and rural roads should be stepped up. Farmers will have better barganing

power when organised into cooperatives or producer companies. A large network of regulated warehouses, whose receipts are negotiable instruments, will cut out middlemen.

---

The Indian EXPRESS
JOURNALISM OF COURAGE

**Date: 22-07-16**

# Beyond capital

## Recapitalisation of banks should be matched by structural reforms in the sector.

On Tuesday, the government said it was releasing Rs 22,915 crore as the first installment towards capital infusion into 13 state-owned banks to provide liquidity support and also to help them raise funds from the market. Banks weighed down by huge bad loans, a legacy of their lending during the go-go days of buoyant economic growth, have welcomed the infusion of funds though many analysts reckon the amount is inadequate considering the scale of challenges ahead. The government may have been guided by the views of the RBI which had earlier indicated that the funds set aside this year would be adequate, especially with the regulator tweaking the rules relating to revaluation reserves and deferred tax assets to make it easier for Indian banks to meet Basel III or global capital norms. Both the government and the RBI too have said in the past that capital would not be a constraint for local banks when credit growth picks up along with an economic rebound.While this latest liquidity support is bound to be cheered, the move also raises some fundamental issues. Primarily, it is the issue of public funds or taxpayer money being provided year after year for well over two decades to a set of intermediaries, without any

intrinsic changes in the governance of these lenders. In any listed entity, investors who provide capital have a legitimate right to question the management and its promoters on the returns generated on these funds, which in the case of many state-owned banks is negative. In a sense, constant infusion of funds over the years by successive governments without ensuring structural changes and accountability may have created a problem of moral hazard. This government has started addressing some of these challenges, but the pace of change aimed at bringing about transformation in governance of these banks has been slow. A key recommendation of the P.J. Nayak committee was that the government should form a Bank Investment Company, which would act as a holding company to house

While this latest liquidity support is bound to be cheered, the move also raises some fundamental issues. Primarily, it is the issue of public funds or taxpayer money being provided year after year for well over two decades to a set of intermediaries, without any intrinsic changes in the governance of these lenders. In any listed entity, investors who provide capital have a legitimate right to question the management and its promoters on the returns generated on these funds, which in the case of many state-owned banks is negative. In a sense, constant infusion of funds over the years by successive governments without ensuring structural changes and accountability may have created a problem of moral hazard. This government has started addressing some of these challenges, but the pace of change aimed at bringing about transformation in governance of these banks has been slow. A key recommendation of the P.J. Nayak committee was that the government should form a Bank Investment Company, which would act as a holding company to house its the shares while paving the way for professionalising the running of these banks and their boards. The government has started implementing some parts of the Nayak committee recommendations, but there seems to be some ambiguity on a key one, which is to separate ownership and management or to ensure some distance between the two.In a way, this kind of financial support by any government to the sector is tantamount to socialising losses of private borrowers given that there are opportunity costs for public funds. The NDA government has argued often that the bad loans mess is a legacy issue. That may be the case, but, clearly, the time is

opportune for a debate on the use of public funds, returns on it and long-term benefits besides accountability and improvement in the governance of banks.

In a way, this kind of financial support by any government to the sector is tantamount to socialising losses of private borrowers given that there are opportunity costs for public funds. The NDA government has argued often that the bad loans mess is a legacy issue. That may be the case, but, clearly, the time is opportune for a debate on the use of public funds, returns on it and long-term benefits besides accountability and improvement in the governance of banks.

---

**Date: 22-07-16**

## Dayashankar's filth:

## BJP must urgently rein in abusive speech driving politics to a new low

BJP's strategy so far has been to ignore filthy and hate-filled comments coming from its ministers and senior leaders. But this is proving expensive now as derogatory remarks against BSP chief Mayawati, coming from BJP's UP vice-president Dayashankar Singh, triggered massive protests in Lucknow with the Dalit based party threatening to launch a nationwide strike if Dayashankar is not arrested. Nothing could be more untimely for BJP, still grappling with Dalit protests across Gujarat where members of a Dalit family were brutally flogged for allegedly skinning a cow. While democracy has room for considerable verbal cut and thrust, it does call for a modicum of respect for one's political opponents. Dayashankar's remarks are

beyond unparliamentary and herald a new low for motormouth politicians using abusive language.

Dayashankar was a rising star for BJP in eastern Uttar Pradesh and Prime Minister Narendra Modi had chosen his native village of Maldapur in Ballia district to launch the Ujjwala scheme in May. The scheme provides cooking gas cylinders to BPL families. But given Dayashankar's foul vituperations BJP has been forced to act against him. It has expelled Dayashankar from the party for six years. The damage, however, has already been done. This incident will dent BJP's Dalit outreach and bolster BSP's ranks in the run up to assembly elections in UP next year.

For BJP, the trend towards filthy language had set in much earlier. Niranjan Jyoti, who's minister of state for food processing, insulted minorities with her infamous 'haramzade' comment. V K Singh, who is minister of state for external affairs and ought to know a thing or two about diplomacy, went so far as describing journalists as 'presstitutes'. Media is an organic part of any modern society. Surely it cannot be dispensed with unless we want to go back to Taliban-style medievalism.

Being a critic of government doesn't automatically make one a 'deshdrohi' or traitor, but you wouldn't know it going by BJP's motormouths. To be fair, some non-BJP state governments don't behave any better. But being the party at the Centre, NDA has added responsibility. Among other things, filthy speech adds to friction in dealing with the opposition, which in turn becomes an obstacle when it comes to passing necessary legislation in Parliament. In its own interest, BJP needs to put out some strictures on filthy speech from its leaders.

---

**Date: 22-07-16**

# Playing yesterday's game:

## India's real foreign policy challenges lie in its neighbourhood

**Indrani Bagchi**

The South China Sea is several seas away from us. The NSG membership will happen some time after we (the people and the government) have stopped hyperventilating about it.

Instead, look closer home. India's immediate neighbourhood remains on its treadmill: furiously running through myriad crises without actually getting anywhere. Can India get beyond firefighting as a foreign policy goal in its backyard?

K P Oli in Kathmandu is fighting to save his seat even as Nepal's only charismatic leader, Prachanda, waits impatiently to become Nepal's 39th prime minister. For the second time in a few months, Oli has played his extreme-nationalist card, blaming India for his predicament. He has a full-blown Madhesi crisis on his hands, he has barely moved on earthquake reconstruction, the economy needs help, tourism is struggling, but he's busy laying the fault at India's doorstep.

Chinese diplomats have been rushing around Kathmandu trying to save him, even though almost six months after Oli trumpeted a China partnership, most of the deliverables are still promises. In May the Chinese prevailed on Prachanda to back Oli to maintain the anti-India phalanx. In fact, this is India's growing challenge in Nepal – unchecked anti-India rants at the official level, through media, by the political leadership, which has a strong trickle-down effect. It gives China an open field to operate in. While India may be able to scotch the odd campaign, China merely has to stoke the embers.

India needs a new playbook in Nepal – it involves, among other things, delivering a single message. Nepal's leaders and people have deep and close bonds with Indians across the social and political spectrum. They should not be hearing different things and believe they can play the Indian system. Second, while reciprocity is not India's gig in Nepal and a small country always has the advantage when dealing with a big one, some home truths need to be aired to Nepalese power.

Yesterday PM Narendra Modi and Sheikh Hasina of Bangladesh inaugurated a container terminal at Petrapole, adding another brick to a growing relationship between India and Bangladesh. India has invested in this relationship and it is paying dividends – Bangladesh will soon become a lower middle income country and India will cheer. Across sectors, India and Bangladesh are learning to work together, not seamlessly, but getting better at it. Bangladesh is now India's entry into Southeast Asia.

But the July 1 terror attack on the Holey Artisan Bakery in Dhaka exposed a huge potential danger that could impact India's strategic plans for its northeast and its Act East policy. Islamist terror groups have existed in Bangladesh for long. Jamaat-e-Islami and its "Shibir" cadres have joined JMB and Ansarullah Bangla and Hizbut Tahrir to create a toxic terror mix. Add to this two new trends – one, of Bangladesh's young sons running away from home to become terrorists; and second, logging on to Islamic State's "virtual planners" to carry out terror attacks and broadcast their brutality.

Daveed Gartenstein-Ross writes that Shafi Armar (aka Yusuf al-Hindi), current head of Ansar-ut Tawhid, IS's South Asian arm, "may have been involved in the early July assault on the Holey Artisan Bakery in Dhaka. IS claimed the Dhaka attack while it was still in progress, the first time the group has done so, suggesting that IS may have been aware of the attack before it occurred".

Sheikh Hasina is right when she says the terror ecosystem is local, and intended to destabilise her government. What she has not bargained for is how quickly local groups tap into global jihad currents, or for that matter how countries like Pakistan can use them. That's where India comes in. Unlike Pakistan, there is no official support to these groups, which makes it easier for India to offer help and cooperation in counterterrorism and intelligence.

But India needs to help Bangladesh to help itself. It won't be in India's interest if Bangladesh's woeful lack of capacity ends up scaring away investors and foreigners. Japan here is an important partner for both India and Bangladesh. But if Japanese

citizens are massacred as they were that night earlier this month, there could be hiccups that would have larger implications. As India and Bangladesh work out a transit and connectivity network with Nepal and Bhutan, the prospect of jihadi swamps in Bangladesh spilling over into these countries could derail sub-regional prosperity and security.

Bangladesh wants a sovereign plan to tackle this menace. India should support it, build capacity, but stay out of the limelight. Unlike in Nepal, Bangladesh is learning to enjoy a more proactive development partner in India. But there remains a simmering whiff of anti-Indianism mixed with nationalist pride, which makes it difficult for India to rush in, guns blazing. India has to find ways to reach beyond this conundrum.

The real neighbourhood challenge comes from an ever deepening China-Pakistan relationship. Andrew Small, author of a deep study of the China-Pakistan axis, says he has noticed a much greater political consonance between these two countries in recent years. India should abandon the "Indian rate of progress" as it builds up Chabahar in Iran, which would be the best counter to Gwadar.

Pakistan is in the midst of its season of discontent on India. It's good the Indian government has not stooped to a war of words with Islamabad, leaving Rajnath Singh to say stuff at his level. But it is a fact that two years on, India under the Modi government is still floundering in the same Pak-China swamp. The "neighbourhood first" policy promised a new approach. Instead, we continue to play yesterday's game.

---

हिन्दुस्तान
तरक्की को चाहिए नया नजरिया

**Date: 22-07-16**

# इतना काफी नहीं कर्मचारियों के लिए

**फिरोज वरुण गांधी, भाजपा सांसद**

कमजोर सेवा और कम उत्पादकता के कारण आम आदमी ही नहीं, निवेशक भी हमारी नौकरशाही की व्यवस्था को लेकर अच्छी राय नहीं रखते। फिर भी, इस सच्चाई को अनदेखा कर दिया जाता है कि सरकारी कर्मचारी, खासतौर से ऊंचे दर्जे के कर्मी, निजी क्षेत्र के कर्मियों के मुकाबले कम वेतन पर काम करने को मजबूर हैं। मसलन, 25 साल का अनुभव रखने वाले सरकारी डॉक्टर को औसतन 2.1 से 2.8 लाख रुपये प्रति महीना मिलता है, जबकि निजी क्षेत्र में 15 वर्ष का अनुभव रखने वाला डॉक्टर भी इससे दोगुना कमा लेता है।

इसी तरह, स्टेट बैंक ऑफ इंडिया (एसबीआई) के अध्यक्ष की आमदनी सालाना 31 लाख रुपये है, जबकि आदित्य पुरी (एचडीएफसी बैंक के मैनेजिंग डायरेक्टर) 9.73 करोड़ रुपये सालाना कमाते हैं। दिलचस्प यह भी है कि एसबीआई के पास 20 लाख करोड़ रुपये से अधिक संपत्ति है, जबकि एचडीएफसी के पास सात लाख करोड़ रुपये की। वेतन-वृद्धि में इसी ठहराव के कारण समूह-सी के कर्मियों की मासिक आय दस वर्षों में 10,000 से बढ़कर महज 25,700 तक ही आ पाई है। विडंबना यह है कि तब भी हम यही उम्मीद पालते हैं कि सरकारी कर्मी अपनी उत्कृष्ट सेवा दें, मगर उस अनुपात में उन्हें वेतन देना गवारा नहीं।

बेशक इससे इनकार नहीं कि वेतन से इतर दूसरे तमाम लाभ आज भी सरकारी क्षेत्र में कायम हैं, मगर सच यह भी है कि यहां प्रदर्शन के आधार पर सालाना वेतन में वृद्धि नहीं होती। सातवें वेतन आयोग की सिफारिशों को दरकिनार कर दें, तो सालाना वेतन-वृद्धि आज भी तीन फीसदी है। महंगाई भत्ता को जोड़ने पर यह आठ फीसदी के आसपास बनती है। सातवें वेतन आयोग ने सिफारिश की है कि उन कर्मियों को सेवा से हटा दिया जाए, जो 20 वर्षों से बेहतर नहीं कर पा रहे हैं। यानी, हम आज भी औसत दर्जे के कर्मचारी या बेहतर प्रदर्शन न करने वाले कर्मियों को उनकी योग्यता से अधिक वेतन देते हैं, जबकि बेहतर प्रदर्शन करने वालों के वेतन में बहुत मामूली वृद्धि करते हैं। यहां उनका अच्छे तरीके से काम करना शायद ही मायने रखता है।

इसकी तुलना में दूसरे देशों में एक अलग तरह का ढांचा काम करता है। जैसे कि सिंगापुर की सरकार हर साल यूनिवर्सिटी बोर्ड में शीर्ष स्थान पाने वाले छात्रों को छात्रवृत्ति देती है। जब ये छात्र पढ़ाई पूरी करके लौटते हैं, तो प्रतिष्ठित प्रशासनिक सेवा के लिए उनका मूल्यांकन किया जाता है, और इनमें से जो श्रेष्ठ होते हैं, वे स्थायी सचिव बनते हैं या फिर आगे जाकर सरकार में मंत्री पद संभालते हैं। हर साल ऐसे अधिकारियों को उनके प्रदर्शन के आधार पर आंका जाता है और अच्छी-खासी तादाद में उन्हें सेवानिवृत्ति भी दी जाती है, ताकि नए अधिकारियों के लिए जगह बन सके।

दरअसल, हमारे यहां सरकारी कर्मियों के लिए जो अप्रेजल सिस्टम (मूल्यांकन प्रणाली) है, उसकी अपनी सीमाएं हैं। अव्वल तो उसमें लक्ष्य व्यापक नहीं होता, और फिर उन लक्ष्यों को पाने के लिए किए गए सफल प्रयासों का बेहतर मूल्यांकन भी नहीं होता। यह आज भी किसी अबूझ पहेली से कम नहीं कि किसी सिविल सेवक के लिए बेहतर प्रदर्शन और उम्मीद के मुताबिक प्रदर्शन की क्या परिभाषा है, जबकि वरिष्ठ अधिकारियों और राजनेताओं के दबाव में आसानी से भेदभाव किया जा सकता है या अस्पष्ट प्रदर्शन मानकों का फायदा उठाया जा सकता है।

इतना ही नहीं, सिविल सेवकों को वार्षिक कॉन्फिडेंशियल रिपोर्ट भी नहीं बताई जाती, नतीजतन वे अपने प्रदर्शन को नहीं परख पाते। उन्हें यह पता ही नहीं होता कि उनका मौजूदा प्रदर्शन किस स्तर का है? लिहाजा रेटिंग और राजनीति से प्रेरित मूल्यांकन की बजाय हमें अपना ध्यान उनकी प्रदर्शन-योजना, रोजाना की समीक्षा और बेहतर प्रदर्शन में कारगर एक कोचिंग सिस्टम बनाने पर होना चाहिए। अप्रेजल-रिपोर्ट की प्रकृति सलाह देने वाली होनी चाहिए, जिसमें पर्याप्त पारदर्शिता हो। विस्तृत कार्य-योजना और काम-काज की छमाही समीक्षा जैसी चीजों के लिए हमें अब अभ्यस्त हो जाना चाहिए।

दिक्कत उस तंत्र में भी है, जो सरकारी कर्मियों की वेतन-वृद्धि जैसी चीजें तय करती हैं। इससे मुश्किलें बढ़ जाती हैं। मसलन, काफी वक्त बाद आए सातवें वेतन आयोग ने वेतन में 23.5 फीसदी की वृद्धि की है। इस बढ़ोतरी का व्यापक आर्थिक प्रभाव पड़ेगा। अनुमान है कि यह वित्तीय वर्ष 2017 में 2.5 लाख करोड़ का अतिरिक्त बोझ बढ़ाएगा। इस तरह की वृद्धि कुछ वर्षों तक सरकार की वित्तीय सेहत बिगाड़ सकती है। छठे वेतन आयोग के बाद ही

वेतन, भत्ते व पेंशन जैसे मदों में सरकार का खर्च बढ़कर 2009-10 में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 2.3 फीसदी हो गया था, जो 2001-02 में 1.9 फीसदी था। राज्यों के लिए यह बढ़ोतरी कहीं ज्यादा मुश्किलें खड़ी कर सकती है। साल 2012-13 में राजस्व व्यय में वेतन व भत्ते के मद में केंद्र सरकार की हिस्सेदारी 13 फीसदी थी, जबकि राज्यों का अनुपात 29 फीसदी से लेकर 79 फीसदी तक था। इसके अलावा, सभी असैन्य कर्मचारियों में वन रैंक-वन पेंशन की संभावित वृद्धि भी पेंशन मद में बोझ बढ़ा सकती है। लिहाजा जरूरी यह है कि निजी क्षेत्रों की तरह सरकारी क्षेत्र में भी वेतन-वृद्धि की एक नियमित क्रमवार प्रक्रिया अपनाई जाए। यह कहीं ज्यादा स्थायी विकल्प होगा। दस वर्षों पर आने वाले वेतन आयोग का अब हम और कितना 'इंतजार' करें?

हमें यह सुनिश्चित करना होगा कि सरकारी क्षेत्र में योग्य लोग आएं। आकार घटाने की बजाय सही आकार की सरकार जरूरी है। अमेरिका में प्रति लाख नागरिकों पर 668 कर्मचारी हैं, जबकि हमारे देश में महज 139 हैं। 18 फीसदी जगहें खाली हैं यहां। इतना ही नहीं, यहां प्रति लाख नागरिकों पर जजों की संख्या सिर्फ 1.2 है। भारत जितना बड़ा देश है, उस हिसाब से हमें अपनी सार्वजनिक सेवाओं के लिए अधिक से अधिक डॉक्टर, शिक्षक, इंजीनियर की जरूरत है, जबकि डाटा इंट्री क्लर्क हमें कम चाहिए। इस दिशा में, प्रशासनिक सुधार आयोग जिन सुधारों की वकालत करता है, उसे अपनाना हमारा पहला कदम होना चाहिए। यही उचित वक्त है कि हम ऐसे प्रभावी सिविल सेवकों का सृजन करें, जो आज की हमारी जरूरतें पूरी करें। जो भ्रष्टाचार मुक्त सेवा दे सकें, आधुनिक अर्थव्यवस्था चला सकें और सार्वजनिक सेवाओं का बेहतर संचालन भी कर सकें। कर्मियों की उत्पादकता को बनाए रखने के लिए नियमित अंतराल पर उनके कामों का मूल्यांकन जरूरी है। इसमें उनकी दक्षता, समयावधि, लोगों को संतुष्ट करने की उनकी क्षमता और कम लागत में बेहतर नतीजे देने में उनकी प्रभावी भूमिका जैसे आधार बनाए जाने चाहिए। उचित मूल्य पर बेहतर सार्वजनिक सेवा हमारी संस्कृति में रच-बस जानी चाहिए।